संपादकीय

राजस्थान सरकार ने पिछले एक साल में शिक्षा संबंधी अनेक निर्णय लिए हैं। ये सभी निर्णय सरकार की मंशा को दर्शाते हैं। अगस्त, 2014 में सरकार ने राज्य के 17,129 सरकारी स्कूलों को समावेशन के नाम पर बंद करने का निर्णय लिया। जनता, नागरिक संगठनों और मीडिया के विरोध का भी कोई बड़ा असर सरकार पर नहीं हुआ। मई, 2015 में सार्वजनिक-निजी साझेदारी पर सरकार एक नीति प्रारूप लेकर आई जिसमें माध्यमिक स्तर के मौजूदा स्कूलों और नए खोले जाने वाले स्कूलों के संचालन को निजी क्षेत्र के सुपुर्द करने का प्रस्ताव है। राजस्थान के शिक्षामंत्री ने एक नई बहस छेड़ते हुए एक वक्तव्य में कहा कि स्कूल की पाठ्यपुस्तकों में बदलाव कर अकबर महान के स्थान पर महाराणा प्रताप को महान के रूप में पढ़ाया जाएगा। 9 जुलाई, 2015 के एक सर्कुलर के जरिए राजस्थान के समस्त कॉलेजों के लिए राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के विचारक राकेश सिन्हा द्वारा लिखित राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के संस्थापक केशव बलिराम हेडगेवार की जीवनी ''आधुनिक भारत के निर्माता डॉ. केशव बलिराम हेडगेवार'' खरीदने का आदेश पारित किया गया है। कहा जा रहा है कि कॉलेजों में हेडगेवार की जीवनी पढ़ाना अनिवार्य किया जा सकता है।

यदि इन निर्णयों को तरतीब से देखें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि राजस्थान सरकार एक तरफ नीति के स्तर पर शिक्षा के निजीकरण का रास्ता साफ कर रही है तो दूसरी तरफ समानान्तर रूप से राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की एकल अस्मिता आधारित हिन्दुत्ववादी विचारधारा को शिक्षा के जरिए मजबूती प्रदान करने का प्रयास कर रही है।

सरकारी स्कूलों को अनार्थिक कहकर समावेशन के नाम पर बंद करने का निर्णय सरकार के द्वारा आनन-फानन में लिया गया। इस निर्णय को करने से पहले न तो सरकार ने इसके संभावित असर का कोई अध्ययन करवाया और न ही निर्णय से पहले स्कूल प्रबंधन समिति से बातचीत की। स्कूल प्रबंधन समिति के साथ संवाद की बात इसलिए महत्त्वपूर्ण है क्योंकि शिक्षा का अधिकार कानून निर्णय की विकेन्द्रीकृत व्यवस्था करते हुए स्कूल प्रबंधन समितियों को स्कूल के विकास की योजना बनाने का दायित्व सौंपता है। इन स्कूलों को बंद करने का निर्णय सरकार के द्वारा केन्द्रीकृत तरीके से लिया गया। इसमें स्कूल प्रबंधन समितियों की कोई सहभागिता नहीं थी। बाल अधिकारों या शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत विभिन्न संस्थाओं के द्वारा किए गए छोटे-छोटे अध्ययनों से पता चला कि इस निर्णय में शिक्षा के अधिकार कानून के प्रावधानों की भी अनदेखी की गई। नतीजा यह कि बंद किए गए स्कूलों में अध्ययनरत अधिकांश लड़कियां, अनुसूचित जाति एवं जनजाति और अल्पसंख्यक वर्ग के बच्चे स्कूल छोड़ चुके हैं। यानी सरकार को समाज के पिछड़े तबकों की शिक्षा की कोई परवाह नहीं है।

सरकार के द्वारा शिक्षा में लाए गए सार्वजनिक-निजी साझेदारी के नीति प्रारूप का आरंभ ही इस मान्यता से होता है कि निजी स्कूल कम खर्च के बावजूद सरकारी स्कूलों से बेहतर शिक्षा उपलब्ध करवा रहे हैं। उनका प्रबंधन एवं क्रियान्वयन बेहतर है। इसलिए सरकार बेहतर गुणवत्ता की शिक्षा के लिए निजी क्षेत्र को साझेदार बनाना चाहती है। हालांकि यह मान्यता किन आधारों पर टिकी है, यह जानना दिलचस्प होगा। क्या यह उस आम धारणा पर आधारित है जिसे निजीकरण के पैरोकार पिछले करीब एक दशक से जनता

और सरकार के दिमाग में ठूंसने की कोशिश कर रहे हैं? या यह किन्हीं ठोस आधारों/अध्ययनों पर आधारित है?

हम जानते हैं कि पिछले करीब एक दशक से सरकारी स्कूलों की गुणवत्ता को खराब बताकर यह स्थापित करने की कोशिशें पुरजोर होती रही हैं कि निजी स्कूल कम खर्चीली और बेहतर शिक्षा उपलब्ध करवा रहे हैं। देश-विदेश की संस्थाएं और अनेक शोधकर्ता इसे साबित करने में जुटे हैं। हालांकि यह सामान्यीकरण निजी स्कूलों की तमाम किस्मों/पर्तों को भुलाकर किया जा रहा है और यह सभी प्रकार के निजी स्कूलों को एक ही श्रेणी में लाकर खड़ा कर देता है। एक तरफ पांच सितारा निजी स्कूल हैं जो बच्चों को भांति-भांति की सुविधाएं देने के नाम पर जनता से मोटी फीस वसूलते हैं तो दूसरी तरफ ऐसे निजी स्कूल हैं जो बिना पर्याप्त आधारभूत सुविधाओं और योग्य शिक्षकों के अपना व्यवसाय चला रहे हैं। सरकार के द्वारा निजी स्कूलों का किया गया यह सामान्यीकरण चिन्ता का विषय है। दरअसल, इस नीति प्रारूप के जरिए जिन निजी स्कूलों की बेहतर गुणवत्ता का बखान किया जा रहा है वे पांच सितारा निजी स्कूल तो नहीं ही हैं क्योंकि उनका खर्च सरकारी स्कूलों से कम नहीं है। ये स्कूल गली-मौहल्लों में कुकुरमुत्तों की तरह फल-फूल रहे स्कूल हैं और इन्हीं का खर्च सरकारी स्कूलों की बनिस्बत कम है। तो क्या सरकार इन स्कूलों को अपना आदर्श मान रही है? यहां कहने का मतलब यह भी नहीं है कि मंहगे निजी स्कूल गुणवत्तापूर्ण शिक्षा मुहैया करवा रहे हैं। भारत के नामी निजी स्कूलों पर किए गए एक अध्ययन से यह निकलकर आया है कि उन स्कूलों में भी बच्चों के सीखने में काफी छेद हैं। सस्ते निजी स्कूलों में बेहतर गुणवत्ता की शिक्षा की इस नीति प्रारूप में तारीफ और आम धारणा को आधार बनाकर नीति निर्माण शिक्षा पर दूरगामी प्रभावों के लिहाज से बहुत ही खतरनाक है।

इस नीति प्रारूप से सरकार के इरादे साफ हैं। वह शिक्षा पर स्थायी निवेश और लोकतांत्रिक सरकार के दायित्वों से बचना चाहती है। इस नीति प्रारूप के अनुसार मौजूदा स्कूलों को 'पहले आओ, पहले पाओ' की नीति पर कोई भी स्वंयसेवी संगठन/ट्रस्ट/अलाभकारी कंपनी ले सकती हैं और नए खोले जाने वाले स्कूलों की बोली लगाई जाएगी। बोली लगाना शिक्षा को मंडी में खड़े करना है। क्या बेहतर शिक्षा बोली के जरिए मुहैया करवाई जा सकती है? क्या यह शिक्षा को सीधे-सीधे बाजार में खड़ा करना नहीं है? संस्थाओं के चयन के दोनों ही तरीके यह गारंटी नहीं देते कि शिक्षा में बेहतर काम करने वाली संस्थाएं इसमें अपनी जगह बना पाएंगी। मौजूदा स्कूलों को लेने वाली संस्थाओं को सरकार स्कूल में नामांकित सभी बच्चों का खर्च देगी। यह शिक्षा पर सरकार के द्वारा किए जाने वाले प्रति बच्चा खर्च के हिसाब से दिया जाएगा जो साल 2013-14 में 14,141 रुपये प्रति बच्चा था और साल 2014-15 में बढ़कर 17,600 रुपये होने जा रहा है। इसके अलावा पिछड़े जिलों में नए खोले जाने वाले स्कूलों पर इन संस्थाओं को 60 प्रतिशत बच्चों का पुनर्भरण सरकार करेगी और 40 प्रतिशत से ये संस्थाएं फीस वसूल सकेंगी। पिछड़े होने का एक अर्थ आर्थिक दृष्टि से या शिक्षा में भागीदारी में पिछड़े होना भी है। इस नीति से यह संभावना भी पुख्ता होती है कि सरकार के इस निर्णय से 40 प्रतिशत का अधिकांश स्कूल से बाहर हो जाए। पुनः सरकार ऐसे वर्गों की अनदेखी कर रही है जो अपने बलबूते शिक्षा हासिल नहीं कर सकते।

यह बहस का विषय हो सकता है कि हेडगेवार का योगदान आजादी के आन्दोलन में कितना रहा या नहीं रहा, लेकिन यह कहा जा सकता है कि देश के ताने-बाने को सबसे अधिक आघात पहुंचाने वाली विचारधारा के संस्थापक की जीवनी को सर्कुलर के जरिए खरीदने का आदेश यह दर्शाता है कि सरकार किसी भी तरह कट्टर हिन्दुत्ववादी विचारधारा को युवाओं के मन में ठूंसने का प्रयास कर रही है। चाहे फिर यह हेडगेवार की जीवनी के जरिए हो या अकबर के स्थान पर महाराणा प्रताप को महान बताकर। शिक्षा की चिंता भावी समाज की चिंता है। पिछले साल में सरकार के द्वारा लिए गए निर्णय इन चिंताओं को अधिक गहराते हैं। सरकार के द्वारा कट्टरतावादी विचारधारा को बढ़ावा देना चिन्ता पैदा करता है। शिक्षा एक लोकतंत्र को बनाए रखने के लिए आवश्यक है और राष्ट्र निर्माण की दूरगामी सोच के साथ शिक्षा की व्यवस्था राज्य ही कर सकता है। निजी संस्थाओं के पास न तो दूरगामी सोच है और न ही वे भारत जैसे बहुलतावादी समाज की जरूरतों को पूरा कर सकती हैं। ◆